International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 1134-1136

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 1134-1136
www.allresearchjournal.com
Received: 25-05-2017
Accepted: 26-06-2017

डा0 निधि शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी विभाग किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

Correspondence
डा0 निधि शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर हिन्दी विभाग किशोरी रमण महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन

डा0 निधि शर्मा

प्रस्तावना

विघटन का अर्थः–

"विघटन" शब्द का संस्कृत "घट" धातु में 'वि' उपसर्ग और 'ल्युट' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ होता है– अलग–अलग करना, 'बर्बादी', 'विनाश'।[1] वस्तुतः "विघटन" संगठन का विलोम है। एक में अनेक का समावेश करना ही संगठन हैं यह समावेश एक निश्चित क्रम से ही है। संगठन का तात्पर्य एक संरचना के अन्तर्गत एकाधिक इकाइयों या तत्वों की उस निश्चित प्रतिमानात्मक संबद्धता से है जो कि एक प्राकार्यात्मक सम्बन्ध के आधार पर उन इकाइयों को एक सूत्र में बांधता है तथा उन्हें क्रियाशील गतिशील करता है ताकि संगठन के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

'विघटन' संगठन का विलोम होने के कारण उसके विपरीत अर्थ प्रदान करता है। बिखराव और विश्रंखलता की स्थिति ही विघटन है। विघटन में असंतुलन होता है। विघटन वह स्थिति है जिसमें कि एक व्यवस्था की विभिन्न इकाइयाँ आपस में एक प्राकार्यात्मक सम्बन्ध को बनाये रखने में असफल होती है और एक पारस्परिक तनावपूर्ण स्थिति में इस तरह से क्रियाशील होती है कि इस असन्तुलित परिस्थिति में स्थापित उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव नहीं होती।

वस्तुतः विघटन व्यवस्था के नष्ट होने अथवा उसके निर्वाचक अंगों की एकता के भंग होने का सूचक है। इस प्रकार हम विघटन को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं। "विघटन" वह स्थिति है जिसमें संगठन के एक–एक अंग को अलग करने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है और व्यवस्था के निर्वाचक अंगों की एकता भंग होने लगती है।"

सामाजिक विघटन की परिभाषाः

समाज में मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एवं कार्यों को पूरा करने के लिये हजारों छोटे–बड़े संगठनों का जन्म हुआ है। इन संगठनों के संचालन के लिये उनके उद्देश्यों मूल्यों एवं नैतिक आर्दशों की एक सामाजिक स्वीकृति होती है। इन संगठनों के सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले तीव्र परिवर्तन जब परम्परागत मूल्यों और सामाजिक नियंत्रण को कम कर देते हैं तब समाज में पारस्परिक टकराव, अपराध, अंधविश्वास की भावना एवं अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं तब समाज की ऐसी दशा को संक्षेप में सामाजिक विघटन कहा जाता है। सामाजिक विघटन, सामाजिक संगठन की विपरीत दशा की एक सापेक्षिक धारणा है अतः हम तब तक किसी समाज को विघटित नहीं कर सकते हैं, जब तक कि उस समाज के समसामयिक मूल्यों, आदर्शों, नैतिक मान्यताओं का परम्परित मूल्यों, आदर्शों एवं नैतिक भावनाओं से मतवैभिन्य न हो ऐसी स्थिति में समाज के व्यक्ति सामाजिक नियन्त्रण से परे हटकर मनमाने ढंग से सम्बन्ध जोड़ते हैं। इस प्रकार समाज में एक असन्तुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस असन्तुलन की दशा को सामाजिक विघटन कहा जाता है तथा असन्तुलन की परिमाप अथवा मात्रा के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि कोई समाज किस सीमा तक विघटित हो चुका है। श्रीमति सरला दुबे ने सामाजिक विघटन को परिभाषित करते हुये कहा है "सामाजिक विघटन सामाजिक संगठन की वह अवस्थ और असंतुलित दशा है जबकि सामूहिक जीवन नष्ट हो जाता है तथा व्यक्तियों और समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध अस्थिर व विकृत हो जाते हैं।"[2]

श्री अजित कुमार माथुर ने 'सामाजिक विघटन' को निम्न प्रकार परिभाषित किया– "सामाजिक विघटन एक ऐसी स्थिति है जिसके द्वारा सामाजिक सम्बन्धों में विषमताएं पैदा हो जाती हैं तथा सामूहिक समरुपता नष्ट हो जाती है अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक विघटन एक ऐसी स्थिति है जिसमें समाज की विभिन्न संस्थाएँ अपनी निश्चित स्थिति, निश्चित उद्देश्यों के अनुरुप कार्य न कर रही हों"।[3]

वस्तुतः सामाजिक विघटन की प्रक्रिया का आरम्भ पाश्चात्य शब्दों में हुआ। यही कारण है कि पाश्चात्य् समाज शास्त्रियों ने सर्वप्रथम इस पर विचार किया।

हमारे लिये भी यह आवश्यक हो जाता है कि हम पाश्चात्य समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भी भली–भाँति समझें। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री इलियट और मेरिल ने सामाजिक विघटन पर गम्भीरता से विचार किया है। उन्होंने 'सामाजिक विघटन' पर विचार करते हुए सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के टूटने को महत्त्वपूर्ण माना। उनका कथन है कि– "सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक समूह के सदस्यों के बीच स्थापित सम्बन्ध टूट जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं।[4]

जानक्यूबर के अनुसार "समय–समय पर सामाजिक संगठन टूटा हुआ परिलक्षित होता है, संगठन का सयंत्र विखंडित दिखाई पड़ता है, जिसकी सम्भावना नहीं होती है या अस्वाभाविक, असंतुलित व्यवहार उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार की संगठन के विपरीत दिखलाई पड़ने वाली दशाएं जो उत्पन्न होती हैं, इन्हें सामाजिक विघटन कहना तर्क संगत है।

उपर्युक्त परिभाषा के अन्तर्गत जानक्यूबर ने सामाजिक संगठन के अन्तर्गत उत्पन्न व्यवधान को सामाजिक विघटन माना है। यह व्यवधान सामाजिक संगठन के टुकड़े–टुकड़े में विखंडित होने में दिखाई पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि विघटित समाज के संगठनों का ही टुकड़े–टुकड़ों में विघटन हो जाता है, उनके व्यवहारों में असमय, असंगत ढंग से असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

फैरिस ने सामाजिक विघटन की परिभाषा इस प्रकार दी है– "सामाजिक विघटन लोगों के मध्य इस प्राकार्यात्मक सम्बन्धों के उस सीमा तक टूट जाने को कहते हैं जिसके कारण समूह के स्वीकृत कार्यों को पूर्ण करने में बाधा उत्पन्न होती है।"

प्रत्येक समाज का निर्माण अनेक समूहों से होता है। समाज में प्रत्येक समूह के कुछ निश्चित उद्देश्य एवं कार्य होते हैं जिन्हें उस समूह के सदस्य या सदस्यों का पूरा करना पड़ता है। इन कार्यों के आधार पर उन लोगों के बीच एक प्राकार्यात्मक सम्बन्ध होता है। जक ये प्राकार्यात्मक सम्बन्ध इस प्रकार टूट जाते हैं कि समूह के स्वीकृत कार्यों को पूरा करने भी कठिन हो जाता है तो यह स्थिति सामाजिक विघटन की स्थिति होती है। प्राकार्यात्मक सम्बन्धों के विखंडन का अर्थ वह है कि समूह के सदस्यों में रहने वाला आंतरिक एकता, पारस्परिक सहयोग एवं सम्बन्ध अवशेष नहीं रहा जिससे समाज समूचित ढंग से क्रियाशील नहीं हो पा रहा है।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर ध्यान देने से दो बातें सामने आती हैं– (1) समूह के सदस्यों के बीच सम्बन्धों का टूटना और (2) समूह के स्वीकृत कार्यों में बाधा पड़ना समाज द्वारा स्वीकृत सम्बन्ध विभिन्न हो सकते हैं, यथा पिता–पुत्र, माता–पुत्री, श्वसुर–बहु, सास–बहु, भाई–भाई, भाई–बहन, देवर–भाभी, ननद–भाभी आदि। इन सम्बन्धों में परस्पर तनाव बढ़ने पर धीरे–धीरे सम्बन्ध टूट जाते हैं और इसके प"चात् समूह के स्वीकृत कार्यों में बाधा पड़ती है। विवाहादि के कार्य समाज के स्वीकृत कार्य हैं, किन्तु विवाह–विच्छेद होना सामाजिक विघटन है।

सामाजिक विघटन के लक्षणः

सामाजिक विघटन की पहचान करने के लिए समाज"ाास्त्रियों ने उनके लक्षणों की पहचान की है। श्री फैरिस ने सामाजिक विघटन के आठ लक्षण बताये हैं– (1) औपचारिकता, (2) पवित्र तत्त्वों का ह्रास, (3) स्वार्थ और रूचित में मतभेद, (4) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और अधिकारों पर बल देना (5) सुखवादी व्यवहार, (6)जनसंख्या में विभिन्नता, (7) पारस्परिक अवि"वास, (8) अ"ाांतिपूर्ण घटनायें।

गिलिन ने सामाजिक विघटन के केवल पाँच लक्षण गिनाये हैं– (1) साधारण दर, (2) समष्टि मापदण्ड, (3)जनसंख्या की रचना, (4) सामाजिक दूरी, (5) हिस्सेदारी

समाजिक विघटन के प्रमुख लक्षण हैं जिससेसमाज तो प्रभावित होता ही है, साहित्य भी प्रभावित होता है। ये कारण है–(1) रूढ़ियों और संस्थाओं का संघर्ष (2) व्यक्तिवादी भावना, (3) एकमत्य का ह्रास, (4) नियंत्रण का प्रभावहीन हो जाना तथा (5) सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति।

प्रत्येक समाज में कुछ रूढ़ियाँ स्थापित होती हैं। परिवर्तन की अवस्था में ही नवीन जीवन–मूल्यों की सृष्टि होती है जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन रूढ़ियों और नवीन जीवन–मूल्यों के मध्य संघर्ष उत्पन्न होता है। प्राचीन रूढ़िवादी व्यक्ति समाज में व्याप्त रूढ़ियों का समर्थन करते हैं और रूढ़िवादिता को तोड़ने वालों से संघर्ष करते हैं। इस संघर्ष की तीव्रता से विघटन के लक्षण का ज्ञान हो जाता है। नारी से सम्बन्धित ही अनेक रूढियाँ हैं नारी को f"ाक्षित करने कीआव"यकता नहीं। विधवा विवाह नहीं हो सकता, पर्दा प्रथा आदि अनेक रूढियाँ इसी प्रकार की हैं। अन्तर्जातीय विवह की रूढ़ि भी इसी प्रकार की है। नवीन चेतना और जीवन मूल्यों के हृदय ने इस संबंध में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये हैं। नारी को पुरूष के समान ही अधिकार दिये जा रहे हैं। भारतीय परिवार की वि"ोषता थी कि वह संयुक्त परिवार था और पा"चात्य परिवार इकाई परिवार। आज पा"चात्य प्रभाव और नगरीय सभ्यता से प्रभावित होने के कारण वैयक्तिक मूल्यों को महत्त्व मिला और सामूहिक परिवारों का विघटन होने लगा। सामूहिक परिवार का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवार के विघटन में पुरूष और नारी दोनों का ही योगदान होता है। वैयक्तिक स्वार्थ, अहं का टकराव, भावना और स्नेह की कमी आदि अन्य घटक भी पारिवारिक विघटन के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों में सामूहिक परिवारों का विघटन ग्राम से लेकर नगर तक के परिवारों में चित्रित किया है। f"ाक्षा के विकास के कारण व्यक्ति अधिक स्वार्थी हुआ है और त्याग की भावना तथा स्नेह की कमी के कारण नारी हो अथवा पुरूष, सामूहिक परिवार को विखंडित करने के लिए तत्पर हो जाता है। इसमें एक पक्ष को दोष नहीं दिया जा सकता। दोनों की भूमिका इसमें बाराबर की रहती है। नरे"ा महता के उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' स्वतंत्रता से पूर्व के काल पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में पारिवारिक विघटन के लिए मूलतः नारी ही उत्तरदायी है, यह स्पष्ट किया गया है। उपन्यास में श्रीनाथ ठाकुर श्रीमोहन की पत्नी को ही विघटन की स्थिति उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदरर समझते हैं। श्रीमोहन ने अपनी पुत्री को पढ़ाने के लिए उसके ननिहाल भेज दिया। अब अपनी पुत्री का विवाह भी वह अपनी ससुराल से करा रहा है अैर इसके लिए माता–पिता से कोई पराम"ा नहीं लिया। श्रीमोहन अपने रहने के लिए अलग मकान बनवा रहा है। किन्तु श्रीनाथ ठाकुर श्रीमोहन से कुछ नहीं कह सकते और उसकी पत्नी से तो क्या ही कहा जाये–

"उसकी पत्नी से भी कुछ नहीं कह सकते हैं क्योंकि श्रीमोहन को ऐसा बनाने में उसी का हाथ है, वह मुँहजोर भी है और घमण्डी भी। भला ऐसी स्त्री से कोई क्या कह सकता है"[5]

परिवार की एक नारी यदि अस्वस्थ रहने का बहाना बना लेती है अथवा दूसरे पर बोझ बन जाती है,तब भी विघटन की स्थिति आ पहुँचती है। "अपने लोग" उपन्यास में प्रमोद के चचेरे भाई रमे"ा की पत्नी अपना इलाज कराने के लिए प्रमोद के घर आती है, वह स्वस्थ हो जाने पर भी बीमारी का बहाना बनाकर पड़ी रहती है और घर के कार्यों में प्रमोद की पत्नी संज्ञा का हाथ नहीं बंटाती, तब आक्रो"ा में भरकर प्रमोद कहता है–

"यह भी अच्छी–खासी मुसीबत आ गयी। दवा के नाम पर सैकड़ों की बर्बादी और यह औरत ऐसी निकम्मी है कि दिनभर टाँग पसार के बैठी रहती है, अपने बच्चे तक नहीं संभाल सकती।"[6]

नारी यदि पतिता हो जाये तो परिवार पूरी तरह विघटित हो जाता है। प्यारेलाल मुख्तार ने जब दूसरा विवाह किया तो उसका दण्ड उन्हें मिला। मुख्तार साहब की पत्नी उनके मुवक्किलों को ही फँसा लेती थी। परिणामतः मुख्तार साहब ने आत्महत्या कर ली। अबवह अपने सौतेले बेटे पर अत्याचार करती है कि उसका

व्यक्तित्त्व ही समाप्त हो जाता है। उसका पुत्र ईसाई बन अपना नाम बी• लाल रख लेता है। वह अपनी माता के इतिहास को जानता है। वह कहता है–

"मैं तो पैदा होते मर ही गया हूँ माँ। मैं जिन्दा कहाँ हूँ? तुमने इस खानदान को जिन्दा ही गाड़ दिया और अब मुझे शराफत का उपदे"ा पिला रही हो। साला शहर का हर ऐरा–गैरा नत्थू–खैरा मुझ पर हँसता है और थूकता है।"[7]

महानगरीय संवेदना के उपन्यास में इकाई परिवार का विघटन चित्रित किया गया है। मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'आपका बन्टी' में शकुन अपने को मिटा नहीं सकी। उसकी चेतना और इसकी अहं पारिवारिक विघटरन के लिए जिम्मेदार बन गया। वकील चाचा ने उससे कहा था–

"तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपने आपको पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सको, अपने को बचाये रखकर तो उसे खोना ही पड़ेगा।"[8]

यहाँ महिला की चेतना और इसका स्वतन्त्र अस्तित्व लुप्त प्रायः होता प्रतीत होता है और इसी कारण वह अपने पति को छोड़कर चली जाती है।

यह कटु सत्य है कि पारिवारिक विघटन में नारी का ही वि"ोष उत्तरदायित्व होता है लेकिन पुरूष की सहमति के बिना वह सम्भव नहीं हो पाता। पुरूष की अक्षमता भी एक ऐसा प्रमुख कारण बनती है किवह इस विघटन को रोक पाने में असमर्थ होता है। "यह पथ बन्धु था" में श्रीनाथ ठाकुर परिवार के मुखिया हैं किन्तु मुखिया का कर्त्तव्य वे ठीक से नहीं निभा सके। इसका पछतावा उन्हें बाद में होता है–

"लेकिन आज नाराज होने से क्या लाभ? और इस सारी गड़बड़ी के कारण क्या वे स्वयं नहीं है? उन्होंने क्या शुरू से सारे बच्चों की गतिविधि नहीं देखी थी? श्रीमोहन की बहू को यदि कड़ककर शुरू में ही बरज दिया गया होता तो उसकी यह हिम्मत हुई होती किवह उसकी पोती के ब्याह में उन्हें दूध की मक्खी ती भाँति अलग कर देती?"

श्रीनाथ ठाकुर की पत्नी का दृष्टिकोण भी यही है कि यदि उसके पति आरम्भ से ही घर के मुखिया की तरह व्यवहार करते होते तो आज परिवार का विघटन नहीं होता–

"क्या ही अच्छा होता कि यदि वे इस तरह तटस्थ देखते रहने के साथ–साथ कहीं बागडोर थामे रहते तो आज यह तीन–तेरह की नौबत तो न आती।"

विघटन की प्रक्रिया का आरम्भ तो उसी समय होता है जब एक पुरूष किसी अन्य पक्ष का शोषण करता है। रामदर"ा मिश्र के उपन्यास "आपने लोग" का मूल बिन्दु यही शोषण है। प्रमोद अपने पिता के कहने पर दिल्ली की नौकरी छोड़कर गोरखपुर के कॉलेज में नौकरी कर लेता है। उसके चचेरे भाई उसका शोषण आरम्भ कर देते हैं। सबसे पहले रमे"ा अपनी पत्नी को गोरखपुर भिजवाता है और सबसे मँहगे डॉक्टर सूर्यप्रका"ा से इलाज करवाने की बात भी कह देता है। प्रमोद के पिताजी बहू को लेकर आते हैं और उनकी मनः स्थिति को समझकर वे उसे स्थिति से परिचित कराते हैं–

"गाँव की सारी औरतों की दवा क्या शहर में ही होती है? लेकिन रमे"ा हमारी जान खा गया। मैंने समझाया भी कि कुछ खास नहीं है, वैध जी को दिखा दो, दवा देंगे, ठीक हो जायेगी। लेकिन वह भुन–भुन करता रहा और गाँव के लोगों से कहना शुरू कर दिया कि घर के ही लोग शहर में रहते हैं, लेकिन मेरी बीबी बीमार है, कोई ख्याल नहीं करता।..... अब करता क्या? लाना पड़ा।"

वस्तुतः यह पारिवारिक सामाजिक विघटन पूर्णतः आधुनिक है और इसकी समस्या है–ईगो और महत्वाकांक्षा। विघटन के कारण भारतीय पुरूष चाहे कोई भी हो इसमें किसी एक ही पक्ष को दोष नहीं दिया जा सकता। दोनों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। डॉ• हेमेन्द्र कुमार पानेरी का निष्कर्ष भी यही है–

"इस प्रकार स्वातन्त्रयोन्तर काल के उपन्यासों में परिवार के परम्परागत मूल्यों का परिवर्तित स्वरूप उपलब्ध होता है। यह सामाजिक विघटन की सापेक्षिक प्रक्रिया है जो सामाजिक संगठन की विपरीत दि"ाा में धोतक है। यह सामाजिक विघटन समाज में उत्पन्न अ"ाांति, अव्यवस्था, मतैक्य का अभाव, पारस्परिक संघर्ष सांस्कृतिक, मतैक्य का अभाव, पारस्परिक संघर्ष, सांस्कृतिक विडम्बना का सूचक है। समाज में सामाजिक विघटन की अभिव्यक्ति वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन, सामुदायिक विघटन के रूप में होती है।